वेदों में योग विज्ञान

Seeta Chaturvedi

Department of Sanskrit, BHU, Varanasi

Abstract

In 21st century, the world 'Yoga' has become a fascination for every body. Globally almost every individual has been practicing 'Yoga' in his day to day life to keep himself mentally, physically and emotionally healthy. People gradually understand to make it a part and parcel of their daily life.

The World Yoga is derived from the Sanskrit root Yuj (To Join, to concentrate one's attention on) meaning to bind, join and attach. In 'Yoga', it means union of Jiva and Bramhan. According to yoga, true happiness, liberation and enlightenment comes from union with the divine consciousness. Yoga is one of the six orthodox systems of Indian Philosophy. Yoga can fundamentally be said to comprise four main streams: Raja Yoga (psycho-physical meditation). Bhakti Yoga (devotion and love), Karma Yoga (selfless action), and Jnana Yoga (self-transcending knowledge). Other forms that exist today sprang up long after the Bhagavad-Gita and Yoga Sutras and are all essentially forms of Raja Yoga.

Vedic literature is the source of Yoga. There are many mantras in Vedas where yoga has been mentioned:

यो अश्वानो ब्रहमणोयुत आसीत कास्वित्तन्न यजमानस्य संविन्।। *ऋग्वेद ८/५८/१*

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ।

समानोमन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम् ।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानिवः। समानमस्तु वो मनो यथा व सुसहासति। (ऋग्वेद १० मण्डल अन्तिमसूक्त 'संज्ञानससूक्त')

Based on the mantras of Vedas and Upanishads. 'Yoga' has been explained in Gita, Puranas, Yoga sutra, and Hathyoga Pradipeeka, etc. theoretically and preactically. The present theoretical and research oriented paper deals various aspects of Yoga Vigyan, which are found in mantras of Vedas and Upanishads.

महर्षि पतञ्जलि ने चित्त की वृत्तियों के निरोध को योग कहा है- 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'।[१] योग शब्द संस्कृत के युज् धातु से बना है। जिसका अर्थ है- जोड़ना अथवा युक्त करना, समाहित अथवा एकाग्र होना। अपनी आत्मा को परमात्मा के साथ युक्त करना ही योग है। योग वह आध्यात्मिक विद्या है, जो जीवात्मा का परमात्मा के साथ संयोग कराने की प्रक्रिया बतलाती है। यह जीव को इन्द्रियगोचर बाह्य प्रपञ्च के मायाजाल से मुक्तकर अखण्ड, परमात्मा के साथ उसका संयोग करा देती है।

वेदों में भी योग का वर्णन मिलता है। वेद के दो विभाग हैं- मन्त्र और ब्राह्मण- 'मन्त्रब्राह्मणात्मको वेदः'। मन्त्रों के संग्रह को संहिता कहते हैं। मन्त्रों के विनियोग आदि विषयों को बतलाने वाला ग्रन्थ ब्राह्मण कहलाता है। ब्राह्मण का अन्तिम भाग आरण्यक होता है। और आरण्यकों का अन्तिम भाग उपनिषद् होता है। उपनिषद् का अर्थ है रहस्य, गुप्त उपदेश। वेद का सारभूत विषय जो परम अधिकार प्राप्त शिष्यों को बताया जाता था वहीं उपनिषदों में वर्णित है। इस प्रकार उपनिषद वेद का ही अंग है। प्रस्तुत शोधपत्र में वेद तथा उपनिषद की दृष्टि से योगविज्ञान की चर्चा की गयी है।

योग शब्द चित्तवृत्तियों के निरोध का वाचक है। चित्तवृत्तियों के निरोध के बिना ज्ञान भक्ति और नित्यादि सत्कर्म की उपयोगिता सिद्ध नहीं होती अत एव परम पुरुषार्थ के प्रतिपादक उपनिषदादि में योग शब्द का प्रयोग दोनों अर्थों में होता है और इसी आशय की पूर्ति के लिए प्रायः सभी उपनिषदों में योग का प्रधानरूप से वर्णन है।

योगभाष्य के रचयिता महर्षि व्यास ने पूर्ण एकाग्रता से परमात्मा में समाहित हो जाना, समाधि की अवस्था प्राप्त कर लेना योग कहा है। इस प्रकार योगशब्द साधन और साध्य दोनों का वाचक है। ऋग्वेद में भी यह शब्द इन्हीं अर्थों में प्रयुक्त हुआ है- जिन इन्द्राग्नि देवता के बिना प्रकाश पूर्ण ज्ञानी का जीवन यज्ञ सफल नहीं होता उसी में ज्ञानियों को अपनी बुद्धि और कर्मों को

Vijnana Bharati

अनन्यरूप में एकाग्र करना चाहिये। उनकी बुद्धि उस देव के साथ तदाकार हो जाती है और वह उनके कर्मों में भी ओत-प्रोत हो जाता है।[२]

योग के इस प्रधान लक्षण का प्रतिपादन यजुर्वेद में अत्यन्त स्पष्ट और सरल शब्दों में किया गया है- सबको उत्पन्न करने वाले परमात्मा पहले हमारे मन[७] और बुद्धि की वृत्तियों को तत्व की प्राप्ति के लिये अपने दिव्य स्वरूप में लगायें तथा अग्नि आदि इन्द्रियभिमानी देवताओं का जो विषयों को प्रकाशित करने का सामर्थ्य है, उसे दृष्टि में रखते हुए बाह्य विषयों से लौटाकर हमारी इन्द्रियों में स्थिरतापूर्वक स्थापित कर दे जिससे हमारी इन्द्रियों का प्रकाश बाहर न जाकर बुद्धि और मन की स्थिरता में सहायक हो।[३] तथा 'युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे! स्वर्ग्याय शक्त्या' अर्थात् हमलोग सबको उत्पन्न करने वाले परमदेव परमेश्वर की आराधनारूप यज्ञ में लगे हुए मन के द्वारा परमानन्द की प्राप्ति के लिए पूर्ण शक्ति से प्रयास करें अर्थात् हमारा मन निरन्तर भगवान की आराधना में लगा रहे और हम भगवत्प्राप्ति जनित अनुभूति के लिये पूर्णशक्ति से प्रयत्नशील रहें।[४]

कठोपनिषद् में योग का वर्णन इस प्रकार किया गया है- जब पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ मनसहित आत्मा में स्थिर होकर बैठती है। बुद्धि भी कोई चेष्टा नहीं करती तब उस अवस्था को परमागति कहते हैं। इस अवस्था में साधक प्रमादरहित होता है। उत्पत्ति और नाश योग ही है।[५]

श्वेताश्वतरोपनिषद् के द्वितीय अध्याय में योग तथा यौगिक क्रियाओं का बहुत ही सुन्दर ढंग से वर्णन मिलता है- प्राणों का आयाम करके खूब तत्परता के साथ शुद्ध प्राणवायु ले जाने पर नासिका से उच्छवास लें। जिस प्रकार सारथी दुष्ट घोड़ों के लगाम को खींचकर उनका नियन्त्रण करता है। उसी प्रकार योगी को एकाग्र होकर मन का निग्रह करना चाहिये।[६] आगे कहा गया है- सम और शुचि, कंकड़ियों से रहित, आग और बालू से वर्जित तथा शसद जल औरी आश्रय के द्वारा मन के अनुकूल लगने वाला, जहाँ चक्षु को पीड़ा देने वाली कोई वस्तु न हो ऐसा तथा गुहा-सा एकान्त और निर्वात स्थान चुनकर वहाँ योगाभ्यास करना चाहिये।[७] योग प्रवृत्त का लक्षण बतलाते हुए कहा गया है- शरीर का हल्का होना, आरोग्य, अलोलुपता, नेत्रों को प्रसन्नता देने वाली शरीर कान्ति, मधुर स्वर, शुभगन्ध, मलमूत्र की कमी ये लक्षण प्रथमा योग प्रवृत्ति के है।[८]

बृहदारण्यकोपनिषद् में भी योग का विशद विवेचन मिलता है- इस प्रकार जानने वाला इन्द्रियों और मन का संयम करके उपरागवृत्ति धारण कर तितिक्षु होकर समाधि परायण हो अपने अन्दर आत्मा को देखता है- 'तस्मादेवंविच्छान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वात्मन्येवात्मानं पश्यति।'[९]

मुण्डकोपनिषद् में योग का महत्व बतलाते हुए कहा गया है कि "वे धीर युक्तात्मा योगी सर्वत्र सर्वव्यापी ब्रह्म को पाकर उस सर्व में ही प्रवेश करते हैं। वेदान्त विज्ञान का अर्थ परमात्मा जिनके चित्त में सुनिश्चित हो चुका है, जो संन्यास योग से बलवान् और शुद्धसत्व हो गए है वे सब ब्रह्मलोक में परान्तकाल में पराममृत होकर मुक्त हो जाते हैं।"[१०]

योगसूत्रकार ने 'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्'[११] अर्थात् जहाँ चित्त को लगाया जाय, उसी में वृत्ति का एकतार चलना ध्यान है। इस प्रकार ध्यान का निर्वचन करके 'तदेवार्थमात्रनिभासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः'[१२]। ध्यान का ही समाधि रूप से निर्वचन किया गया है।

समाधि को ही महर्षियों ने योग कहा है।[१३] उपनिषदों में योग के चार प्रकार बतलाये गए हैं-

१- मन्त्रयोग

२- लययोग

३- हठयोग

४- राजयोग

योगशिखोपनिषद् में मन्त्र, लय, हठ, और राज इन चारों को योग की यथाक्रम चार भूमिकाएँ कही गयी हैं। चारों मिलकर यह एक ही चतुर्विध योग है जिसे महायोग कहते है।[१४] प्राणापान को समान करना योगचतुष्टय कहा गया है।[१५]

संक्षेप में इन चारों का वर्णन इस प्रकार है-

दिव्यनामरूप के अवलम्बन से चित्त वृत्ति निरोध की क्रियाओं को शास्त्र में मन्त्रयोग कहा गया है। योगतत्त्वोपनिषद् में मन्त्रयोग के विषय में कहा गया है- 'मातृकादियुतं मन्त्रं द्वादशाब्दं तु यो जपेत्। क्रमेण लभते ज्ञानमणिमादिगुणान्वितम्।'[२१/२२] पतञ्जलि मुनि ने भी मन्त्रयोग का वर्णन किया है- 'तस्य वाचकः प्रणवः। तज्जपस्तदर्थभावनम्।'[१६]

मन्त्रयोग, लययोग और हठयोग का फल राजयोग है। विचार के द्वारा चित्तवृत्ति निरोध की क्रियाशैली का नाम राजयोग

Vijana Bharati

है, सभी प्रकार की मानसिक बाधाओं को हटाकर मन को पूर्णतया स्वस्थ और संयमी बनाना राजयोग का उद्देश्य है। राजयोग के अनेक नाम है- आत्मनिष्ठा, ब्रह्मनिष्ठा, राजविद्या, राजगुह्य महायोग, अस्पर्शयोग, सांख्ययोग, अध्यात्मयोग, ज्ञानयोग, राजाधिराजयोग इत्यादि। भक्ति तथा छः दर्शनों के अनुसार राजयोग के सात अंग है- वे सब विचार प्रधान है। धारणा के दो अंग है- प्रकृतिधारणा और ब्रह्मधारणा। ध्यान के तीन अंग है। विराटध्यान, ईशध्यान तथा ब्रह्मध्यान। समाधि के चार अंग है- वितर्कानुगत, विचारानुगत, आनन्दानुगत अस्मितानुगत। इनके स्थूलभूत, सूक्ष्मभूत, इन्द्रिय, अहंकार तादात्म्यापन्न, पुरुष क्रमशः ध्यान का विषय है।

त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में राजयोग के आठ अंग बतलाये गये है- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि। देहादि में वैराग्य यम है। निरन्तर परमतत्व में अनुरक्ति का नाम नियम है। सभी वस्तुओं में उदासीनता आसन है। जगत में मिथ्यात्व निश्चय प्राणायाम है। चित्त की अन्तर्मुखता प्रत्याहार तथा चित्त का तत्व में निश्चलभाव धारणा है। चिन्मात्र ब्रह्म ही मै हूँ इस चिन्तन का नाम ध्यान है। ध्यान की अच्छी तरह विस्मृत अर्थात् संस्कारशेष अवस्था समाधि है।[२६] तेजोबिन्दूपनिषद में राजयोग के पन्द्रह अंग[२७] तथा योगचूडामणि उपनिषद में राजयोग के आसनादि छः अंग बताये गये हैं।

महर्षि पतञ्जलि ने यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि के भेद से योग के आठ अंग बतलाये है।[२८] अमृतोपनिषद् में षडंगयोग का वर्णन है। ये है- प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, तर्क और समाधि।[२९] शाण्डिल्योपनिषद में अष्टांगयोग शाण्डिल्य से अथर्वा कहते हैं। उपनिषदों में योग के भेद के आधार पर भिन्न-भिन्न योग के अंग बतलाये गये है। जिसका वर्णन पूर्व में किया जा चुका है।

योग का मार्ग आसान नहीं है। इस मार्ग में अनेक बाधायें हैं। महर्षि पतञ्जलि ने योग के नौ अन्तराय अर्थात् विघ्न तथा पांच उपान्तराय अर्थात् उपविघ्न का वर्णन किया है। ये नौ विघ्न हैं- व्याधि, स्त्यान, अर्थात् शिथिलता, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्ति दर्शन, अलब्धभूमिकत्व और अनवस्थित। पाँच उपविघ्न हैं- दुखं, दौर्मनस्य, अंगमेजयत्व, श्वास और प्रश्वास।[३०] इन विघ्नों के नाश के लिये भिन्न-भिन्न उपाय भी बतलाये गये है। तज्जपस्तदर्थभावनम्।[३१] अर्थात् उस ऊँकार का जप उसके अर्थ स्वरूप परमेश्वर का चिन्तन करना चाहिए। इससे विघ्नों का अभाव और अन्तरात्मा के स्वरूप का ज्ञान भी हो जाता है। अन्य उपाय भी बतलाये गये है- 'तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः'[३२] अर्थात् एक तत्त्व का अभ्यास करना चाहिए। भगवान् की कृपा से ही इन विघ्नों का नाश तथा समाधि फल की प्राप्ति होती है। वेदों में अनेक मन्त्र मिलते हैं जिनमें निर्विघ्न समाधि के लिये प्रार्थना की गयी है- हे सबको उत्पन्न करने वाले परमेश्वर! मन और इन्द्रियों के अधिष्ठाता देवताओं को, जो स्वर्ग आदि लोकों एवं आकाश में विचरने वाले, तथा बड़ा भारी प्रकाश प्रदान करने के लिए प्रेरणा दें, ताकि हम उस परमेश्वर का साक्षात् करने के लिये निद्रा, आलस्य, और अकर्मण्यता आदि दोष हमारे ध्यान में विघ्न न उत्पन्न करें।[३३]

ऋग्वेद में गौतम ऋषि मरुत् देवताओं का आवाहन कर उनसे ज्योति प्राप्ति की प्रार्थना करते है- 'यूयं तत् सत्यशवस आविष्कर्त महित्वना। विध्यता विद्युता रक्षः।। गूहता गुह्यं तमो वि यात विश्वमत्रिणम्। ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसि। अर्थात् हे सत्य के बल से सम्पन्न मरुतों! तुम्हारी महिमा से परमतत्व हमारे सामने प्रकाशित हो गया। विद्युत के सदृश अपने प्रकाश से राक्षसों का विनाशकर डालो। हृदय गुहा में स्थित अहंकार को छिन्न-भिन्न कर दो, जिससे वह अंधकार सत्य की ज्योति की नाव में डूबकर तिरोहित हो जाये। हमारी अभीष्ट ज्योति को प्रकट कर दो। यह मरुत् देवताओं से योगपरक अर्थ करने में पञ्चप्राण-प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान का भी ग्रहण हो सकता है इन पर पूर्ण प्रभुत्व की प्राप्ति से योगाभ्यासी को शक्ति के आरोहण का अनुभव और परमतत्व का साक्षात्कार प्राप्त होता है। साक्षात्कार से जिस ज्योति के दर्शन होते है वही योगी का अभीष्ट ध्येय है।

मन्त्रयोग से पश्चिमपथ सुषम्ना का दर्शन होता है। सुषुम्ना दर्शन से चित्त स्थिति द्वारा तत्त्व साक्षात्कार के मन्त्रयोग का फल है अर्थात् साडेदम इत्यादि मन्त्रजप करते करते जो चित्तवृत्ति का निरोध होता है, उसका नाम मन्त्रयोग है। यदि मानस जप और मौखिक जप न हो सके तो लेखात्मक जप करना चाहिए। इससे भी मन स्थिर हो जाता है।[३७]

समष्टि व्यष्टि के सिद्धान्त के अनुसार जीव शरीररूपी पिण्ड तथा समष्टिसृष्टिरूपी ब्रह्माण्ड दोनों एक है। अतः ब्रह्माण्ड की समस्त वस्तुओं उसी के समान पिण्ड में अवश्य हैं। पिण्ड में ब्रह्माण्ड व्यापिनी प्रकृतिशक्ति का केन्द्र मूलाधार पक्ष में स्थित सार्धत्रिवलयाकार साढ़े तीन चक्र लगाये हुए सर्पवत् कुण्डलाकृति कुण्डलिनी है। ब्रह्माण्डव्यापी पुरुष का केन्द्र सहस्त्रदलकमल है, निद्रित कुलकुण्डलिनी को गुरु के द्वारा बतायी गयीं योगक्रियाओं

Vijnana Bharati

से प्रबुद्ध करते हैं। कुल कुण्डलिनीस्थ प्रकृतिशक्ति को सुषम्नानाडी गुम्फित षटचक्रों के भेदन द्वारा ले जाकर सहस्रकमलदलनिदारी परमात्मा में लय करने की जो क्रियाशैली है और तदनुयायी जितने साधन है, उनको लययोग कहते है।[१८]

इस प्रसंग में योगराजोपनिषद् में नवचक्रों का वर्णन दिया गया है। योगतत्त्वोपनिषद् में लययोग का वर्णन है।[१९] हठयोगप्रदीपिका में लययोग के विषय में कहा गया है - इन्द्रियों का स्वामी मन है और मन का स्वामी प्राण है, प्राण का स्वामी मन का लय है। मन का लय नाद के श्रवण से होता है। अर्थात् षणमुखी मुद्रा में अपने दो अंगुठों से कान, दो तर्जनियों से आंख, दो मध्यमाओं से नाक, बाकी अंगुलियों से मुख बन्द करके आधी रात्रि के बाद आन्तर शब्द में मन को लगाये।[२०] इसी प्रकार 'लयो विषयविस्मृतिः निरालम्बं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् भ्रुवोर्मध्ये शिवस्थानं मनस्तत्र विलीयते, विलाप येदित्यर्थः।'[२१]

यम, नियम, स्थूल क्रिया, सूक्ष्मक्रिया, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, लय क्रिया और समाधि लययोग के अंग हैं। लय योग के अलौकिक रहस्य विज्ञान को जानने के लिये मन्त्रद्रष्टा ऋषि भी उत्कण्ठित रहा करते थे। इसका संकेत ऋकसंहिता मण्डल १, सूक्त ३४, मन्त्र १ में मिलता है।[२२] छान्दोग्य प्रतिपादित सृष्टि के अनुसार अग्नि, जल, पृथिवी, इन तीन भूतों का कार्य शरीर है। 'शरीर रथमेव तु' इस कठश्रुति के प्रमाण से रथ शरीर का नाम है। इस शरीररथ के मध्य में नीचे के तीन चक्र जिनके मूलाधार, स्वाधिष्ठान तथा मुणिपूर नाम है। वे कहाँ है, उनका स्थान विशेष कौन सा है, यह हमें ज्ञात नहीं है। जीवधारक बन्धु जीव पुष्प के समान नितान्त रक्तपूर्ण कन्दर्प नामक वायु कहाँ है। उसके निवास स्थान के ज्ञान से भी हम वञ्चित है। शिव वासस्थान सहस्रदलकमल सहित उपर के तीन चक्र, जिसके अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा ये नाम है, कहाँ है, यह भी हमें ज्ञात नहीं, सर्वशक्तिसम्पन्न आनन्दघन स्वप्रकाश शिवप्रकाश परमात्मा जो सर्वशक्ति, संगमरूप रासलीला से शोभित होते है, उनका आधार पदनस्थित कुलकुण्डलिनी महाशक्ति से योग अर्थात् कुल कुण्डलिनी का उनमें लय जिसके शिवशक्ति परस्पर संलग्न होते है, वह लय किस समय होता है, इसका भी हमें पता नहीं है। हे अविनाशी शिवशक्ति माता-पिता आपकी कृपा से लय योग सम्बन्धी ये सब बातें मुझे ज्ञात हों और मैं जानकर उस लययोग का अभ्यास करुँ।

शरीर से सम्बन्ध रखनेवाली षट्कर्मादि योग क्रियाओं के अभ्यास के द्वारा शरीर पर नियन्त्रण रखते हुए सूक्ष्म शरीर पर दबाव डालकर चित्तवृत्ति निरोध की जितनी क्रियाशैलियाँ है, उनका नाम हठयोग है। हकार सूर्य अर्थात् दृष्टिनाड़ी, पिङ्गला जो उष्ण है। ठकार चन्द्र अर्थात् वाम नाड़ी, इडा जो शीतल है। इन दोनों सूर्य नाड़ी एवं चन्द्र नाड़ी का योग करना हठयोग कहलाता है।[२३] योगशिखोपनिषद में कहा गया है- सूर्य नाम दक्षिण स्वर का है। चन्द्र नाम वाम स्वर का है। दोनों की समता का नाम हठयोग है अर्थात् नाभि से उठकर नासिका के अग्रभाग से बारह अंगुल पर्यन्त प्राण वायु बाहर जाता है। पुनः लौटकर नाभि में प्राण वायु आता है इस प्रकार प्राणवायु की स्वाभाविक गति है। प्राणायाम के द्वारा योगी प्राणवायु गति को एक, दो-दो अंगुल क्रमशः घटावे जब द्वादश अंगुल बाहर की गति बन्द हो जाये और केवल नासिका के भीतर ही दोनों स्वर सम होकर सुषुम्ना से जिस अवस्था में प्राण चले उस अवस्था का नाम हठ है।[२४] 'योगतत्वोपनिषद्' में भी हठयोग का वर्णन मिलता है।[२५] हठयोग के सात अंग है- षट्कर्म, आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान और समाधि।

योग सभी धर्मों का साधन है। त्रिविध यज्ञ-कर्म, यज्ञ, उपासना तथा ज्ञान यज्ञ का आधार है। योग के बिना इनकी सिद्धि नहीं हो सकती। अतएव योगी याज्ञवल्क्य ने लिखा है- यज्ञाचार, दम, अहिंसा, दान, स्वाध्याय प्रभृति धर्मों से योग के द्वारा आत्मदर्शन करना परम धर्म है। इस परम धर्म का साधन योग है।[३४] ऋक्संहिता में भी कहा गया है- योग के बिना विद्वान का भी कोई यज्ञकर्म सिद्ध नहीं होता। वह योग क्या है, योग चित्तवृत्तियों का निरोध है, वह कर्तव्य कर्ममात्र में व्याप्त है।[३५]

चेतना के उत्तरोत्तर आरोहणक्रम में योगी को जो अनुभूतियाँ होतीं हैं उनका वेदों में भी वर्णन किया गया है- आठ चक्रों और नौ द्वारों से युक्त हमारी यह देहपुरी एक अपराजेय देवनगरी है। इसके एक तेजस्वी कोश है, जो ज्योति और आनन्द से परिपूर्ण है।[३६]

बृहदारण्यकोपनिषद के मैत्रेयीब्राह्मण में 'आत्मा वा अरे द्रष्टयः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः' अर्थात् आत्मा का ही दर्शन श्रवण, मनन और निदिध्यासन् करना चाहिये इस वचन द्वारा श्रवण, मनन के सदृश निदिध्यासन आत्मसाक्षात्कार का साधन है। निदिध्यासन ध्यान का ही नाम है। कठोपनिषद में यमराज ने ऋषिकुमार नचिकेता को उपदेश देते हुये योग से अमृत पद की प्राप्ति बतलायी गयी है- 'अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति।'[३७]

Vinena Bharati

श्वेताश्वतरोपनिषद में कहा गया है कि – 'न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम् ।' अर्थात् योगाग्निमय शरीर जिसको प्राप्त होता है उसे कोई रोग नहीं होता, बुढ़ापा नहीं आती और मृत्यु भी नहीं होती। जब योगी दीपक के सदृश प्रकाशमय आत्मतत्त्व के द्वारा ब्रह्मतत्व को भी भलीभांति प्रत्यक्ष देख लेता है उस समय वह उस अजन्मा, निश्चल समस्त तत्वों से विशुद्ध परमदेव परमात्मा को जानकर सब बन्धनों से सदा के लिये छूट जाता है।[३८]

महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपने विचारों के उपसंहार में लिखा है 'अयमेव परमोलाभः यद्योगेन आत्मदर्शनम् '। इस प्रकार वेदों में योग विज्ञान की विस्तृत विवेचना की गयी है।

सन्दर्भ :

१. योगसूत्र, समाधि पाद – १, २
२. ऋग्वेद- १/१८/७
३. यजुर्वेद, पाँचवा अध्याय
४. यजुर्वेद, पाँचवा अध्याय
५. कठोपनिषद २, ३/१०
६. श्वेताश्वतरोपनिषद २/९
७. श्वेताश्वतरोपनिषद २
८. श्वेताश्वतरोपनिषद, २/१०, १३
९. बृहदारण्यकोपनिषद्, ४/४/२३
१०. मुण्डकोपनिषद् ३/२/५-६
११. योगसूत्र, ३/२
१२. योगसूत्र, ३/३/
१३. याज्ञवल्क्य०
१४. योगतत्त्वोपनिषद्
१५. योगतत्त्वोपनिषद्
१६. योगसूत्र, १/२७-२८
१७. योग
१८. योगाङ्क गीता प्रेस
१९. योगतत्त्वोपनिषद् - २३-२४
२०. हठयोगप्रदीपिका ४/२९
२१. वहीं, ४/३४, ५०, ४८
२२. वहीं
२३. श्रीगोरक्षनाथजी, सिद्ध सिद्धान्तपद्धति
२४. योगशिखोपनिषद्
२५. योगतत्त्वोपनिषद् २४-२५, २८, २९
२६. त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्, २८-३२
२७. तेजोबिन्दुपनिषद्, १/१५, १६, १७
२८. योगसूत्र, साधनपाद- २, २९
२९. अमृतनादोपनिषद्
३०. योगसूत्र, समाधिपाद- १,३०
३१. योगसूत्र, समाधिपाद- १,२८
३२. योगसूत्र, समाधिपाद- १, ३२
३३. यजुर्वेद, पाँचवा अध्याय
३४. याज्ञवल्क्यस्मृति
३५. ऋकसंहिता, १/१८/१७
३६. अथर्ववेद १०/२/३१
३७. कठोपनिषद्, ९/२/१२
३८. श्वेताश्वतरोपनिषद् २/१५

Vijnana Bharati